

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 1: जय और विजय की कथा

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



महान् राजसूय यज्ञ में, वह राजा जिसने अभी-अभी अपने चचेरे भाई के कट्टर शत्रु को भगवान् में ज्योति-रूप में विलीन होते देखा है, नारद ऋषि से वही प्रश्न पूछता है जो हर प्रेमी हृदय अन्ततः पूछता है: यदि भगवान् सबके प्रति समान हैं, तो वे पक्ष लेते हुए क्यों प्रतीत होते हैं?

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

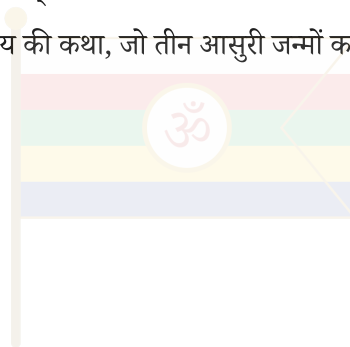
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम सप्तम स्कन्ध का आरम्भ करते हैं, जो सम्पूर्ण भागवत के सर्वाधिक प्रिय भागों में से एक है — वही स्कन्ध जो हमें बाल-भक्त प्रह्लाद तथा भगवान् के उग्र किन्तु स्नेहमय अवतार नृसिंह (नर-सिंह) की अमर कथा देगा। किन्तु उस महान् आख्यान के आरम्भ से पूर्व श्रीशुकदेव

गोस्वामी को राजा परीक्षित की एक शंका का समाधान करना है: वे परम भगवान्, जो प्रत्येक जीव के समान हितैषी हैं, बार-बार देवताओं के पक्ष में असुरों का वध करते हुए कैसे प्रतीत होते हैं? क्या परमात्मा के वास्तव में मित्र और शत्रु हैं?

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 1
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् सबके प्रति समान हैं — जय और विजय की कथा
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को उत्तर देते हुए); उनकी कथा के भीतर, देवर्षि नारद (सम्राट युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; स्मरण किए गए दृश्य में, युधिष्ठिर तथा राजसूय यज्ञ में एकत्रित ऋषिगण
- मुख्य स्थान: गंगा-तट पर श्रीशुकदेव का परीक्षित को दिया उपदेश; उसके भीतर, युधिष्ठिर का महान् राजसूय यज्ञ-मण्डप
- मुख्य विषय-वस्तु: भगवान् की पूर्ण समता तथा पक्षपात से मुक्ति; कैसे भगवान् में मन को स्थिर करना — भक्ति, भय, काम अथवा द्वेष के द्वारा भी — उन तक पहुँचाता है; तथा वैकुण्ठ के द्वारपाल जय और विजय की कथा, जो तीन आसुरी जन्मों का शाप पाते हैं
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 1, श्लोक 1-48
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



एक राजा की निष्कपट शंका

सप्तम स्कन्ध का आरम्भ किसी कथा से नहीं, अपितु एक प्रश्न से होता है — और यह वैसा प्रश्न है जिसे केवल एक निष्ठावान हृदय ही मुखर होकर पूछने का साहस करता है। पूर्व स्कन्धों में भगवान् के उन अनेक अवतारों के विषय में सुनकर जिनमें देवताओं की रक्षा हेतु असुरों का संहार हुआ, राजा परीक्षित अपने गुरु के समक्ष वह कठिनाई रखते हैं जिसे वे मौन रहकर नहीं छोड़ सकते।

श्रीराजोवाच

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम् ।

इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यान्वधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥

śrī-rājovāca samah priyaḥ suhṛd brahman bhūtānāṁ bhagavān svayam indrasyārthe katham daityān avadhīd viṣamo yathā

अर्थ: राजा परीक्षित ने कहा: हे विप्र! भगवान् स्वयं सबके प्रति समान, प्रत्येक जीव के प्रिय सुहृद् तथा हितैषी हैं; फिर उन्होंने पक्षपाती पुरुष के समान केवल इन्द्र के लिए असुरों का वध कैसे किया? (SB 7.1.1)

परीक्षित इस बात को और आगे बढ़ाते हैं। भगवान् तो परम आनन्द के मूर्त स्वरूप हैं; देवताओं से उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता और वे प्रकृति के गुणों से अछूते हैं — अतः न तो इन्द्र की विजय में उनका कोई स्वार्थ हो सकता है, न असुरों के प्रति कोई वास्तविक द्वेष, भय की तो बात ही क्या। राजा स्वीकार करते हैं कि भगवान् नारायण की पूर्णता के विषय में उनके मन में एक गम्भीर शंका उठी है, और वे अपने गुरु से उसका समाधान माँगते हैं।



गंगा के तट पर, राजा परीक्षित श्रीशुकदेव गोस्वामी के समक्ष अपनी निष्कपट शंका रखते हैं: यदि भगवान् सब जीवों के समान हितैषी हैं, तो वे असुरों के विरुद्ध देवताओं का पक्ष लेते हुए क्यों प्रतीत होते हैं (SB 7.1.1-3)?

भगवान् काल के माध्यम से कार्य करते हैं, पक्षपात से नहीं

श्रीशुकदेव इस प्रश्न से विचलित नहीं, अपितु प्रसन्न होते हैं, और उसकी प्रशंसा उस प्रश्न के रूप में करते हैं जो भक्ति को प्रगाढ़ करता है और नारद जैसे ऋषियों द्वारा गाया गया है। उनका उत्तर एक स्पष्ट सिद्धान्त से आरम्भ होता है: भगवान् वस्तुतः तीनों गुणों — सत्त्व, रज तथा तम — से परे हैं, क्योंकि ये प्रकृति के हैं, आत्मा के नहीं। जब भगवान् दण्ड देते प्रतीत होते हैं, तब वे क्रोध या पक्षपात से प्रेरित नहीं होते; वे केवल अपनी ही सृजनात्मक शक्ति (माया) के व्यापार पर अधिष्ठाता के रूप में स्थित रहते हैं। संसार में गुणों का उत्थान-पतन एक साथ नहीं होता, और भगवान्, ब्रह्माण्डीय काल की गति के अनुरूप, सत्त्व के प्रबल होने पर देवताओं तथा ऋषियों का पोषण करते हैं, और रज-तम के प्रबल होने पर असुरों का हास करते हैं।

य एष राजन्नपि काल ईशिता
सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ।
तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो
रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ १२ ॥

ya eṣa rājann api kāla īsitā sattvaṁ surāṇīkam ivaidhayaty ataḥ tat-pratyanīkān asurān sura-priyo rajas-tamaskān pramiṇoty uruśravāḥ

अर्थ: हे राजन्! यही काल, जिसके नियन्ता स्वयं भगवान् हैं, सत्त्व के बढ़ने पर देवताओं की सेना को पुष्ट करता है; और इस प्रकार यशस्वी भगवान्, देवताओं के प्रिय सुहृद्, उनके विरोधी असुरों का — जो रज तथा तम से अभिभूत हैं — हास करते हैं; वे काल के माध्यम से कार्य करते हैं, किसी पक्षपात से नहीं। (SB 7.1.12)

यह सिद्ध करने के लिए कि भगवान् द्वेष से पूर्णतः रहित हैं, श्रीशुकदेव एक ऐसी कथा स्मरण करते हैं जो पूर्वकाल में नारद ने सम्राट युधिष्ठिर को उनके राजसूय यज्ञ के समय सुनाई थी — वही अवसर जिस पर युधिष्ठिर ने कुछ आश्चर्यजनक देखा था।

वह शत्रु जो भगवान् में विलीन हो गया

राजसूय में एकत्रित राजाओं तथा ऋषियों ने देखा था कि चेदिराज शिशुपाल — श्रीकृष्ण का आजीवन निन्दक — भगवान् के चक्र से मारा गया, और फिर, सबके देखते-देखते, उसकी आत्मा एक प्रज्वलित ज्योति के रूप में उठकर सीधे श्रीकृष्ण के स्वरूप में समा गई। युधिष्ठिर चकित रह गए। एक कटु, निन्दक शत्रु उस परम विलीनता को कैसे प्राप्त कर सकता है जिसे भगवान् के अनन्य भक्त भी कठिनाई से पाते हैं? उन्हें स्मरण हुआ कि किस प्रकार राजा वेन को भगवान् की निन्दा के कारण ब्राह्मणों ने प्रायः नरक में डाल दिया था, फिर भी शिशुपाल तथा दन्तवक्र, जिन्होंने बचपन से ही कृष्ण का तिरस्कार किया, वैसे दण्ड को न प्राप्त कर उलटे उन्हीं में समा गए। उनका मन, उन्होंने स्वीकार किया, वायु में दीपशिखा के समान डोल रहा था।



राजसूय यज्ञ में, वध किए गए शिशुपाल की आत्मा एक दीप्तिमान ज्योति के रूप में उठकर भगवान् श्रीकृष्ण में विलीन हो जाती है, और एकत्रित राजा तथा ऋषि आश्चर्यचकित रह जाते हैं (SB 7.1.14-19)।

नारद का रहस्य: भगवान् में स्थिर मन

नारद का उत्तर भागवत की सर्वाधिक विलक्षण शिक्षाओं में से एक को उद्धाटित करता है। “मैं” और “मेरा” का देहात्म-भाव ही, वे कहते हैं, समस्त सुख-दुःख, मान-अपमान का मूल है; किन्तु परमात्मा, अद्वितीय होने के कारण, ऐसा कोई देह-भाव नहीं रखते और अतः किसी के प्रति कोई वास्तविक शत्रुता नहीं रखते — जब वे दण्ड देते भी प्रतीत होते हैं, तब भी वे अपराधी के परम हित के लिए ही ऐसा करते हैं। जो महत्त्वपूर्ण

है, नारद कहते हैं, वह भाव नहीं, अपितु वह तीव्रता है जिससे मन भगवान् में लीन हो जाता है। भक्ति से, भय से, काम से, अथवा द्वेष से — यदि किसी की समस्त चेतना उनमें स्थिर हो जाए, तो वह व्यक्ति शुद्ध होकर उनकी ओर खिंच जाता है।

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ।

न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २७ ॥

yathā vairānubandhena martyas tan-mayatām iyāt na tathā bhakti-yogena iti me niścītā matiḥ

अर्थ: मनुष्य निरन्तर वैर-भाव से भगवान् में इतना तन्मय हो जाता है, जितना वह भक्तियोग से भी नहीं होता — ऐसा मेरा निश्चित मत है। (SB 7.1.27)

नारद एक सरल उदाहरण देते हैं: जैसे भुंगी (ततैया) द्वारा बन्दी बनाया गया छोटा कीट उसी का भय से निरन्तर चिन्तन करते-करते उसी का रूप धारण कर लेता है, वैसे ही जो लोग बिना रुके — वैर से भी — कृष्ण में मन लगाते हैं, उनके पाप धुल जाते हैं और वे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। तत्पश्चात् वे उन अनेक मार्गों को नाम देते हैं जिनसे विभिन्न जीव भगवान् तक पहुँचे — एक श्लोक जो तभी से भक्तों को प्रिय है।

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।

सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥ ३१ ॥

gopyaḥ kāmād bhayāt kaṁso dveṣāc caidyādayo nṛpāḥ sambandhād vṛṣṇayaḥ snehād yūyaṁ bhaktyā vayaṁ vibho

अर्थ: व्रज की गोपियों ने प्रेम-लालसा की तीव्रता से उन्हें पाया; कंस ने भय से; शिशुपाल तथा वैसे अन्य राजाओं ने द्वेष से; वृष्णिवंशी ने सम्बन्ध से; आप पाण्डवों ने स्नेह से; और हम ऋषियों ने भक्ति से, हे प्रभो! (SB 7.1.31)

शिक्षा यह नहीं है कि द्वेष कोई अनुशंसित मार्ग है — नारद स्पष्ट हैं कि वैर-भाव मार्ग में जीवों को उनके विनाश की ओर ले जाता है, और केवल भगवान् की अचिन्त्य कृपा ही उनके स्थिर वैर को मुक्ति में बदल देती है। मूल बात, अपितु, यह है कि जो कोई भी वास्तव में कृष्ण में मन स्थिर करता है, वह कभी नष्ट नहीं होता। अतः, नारद आग्रह करते हैं, हर उपाय से मनुष्य को उनमें मन लगाना सीखना चाहिए।

शिशुपाल और दन्तवक्र कौन थे?

यह सुनकर युधिष्ठिर विस्मय से पूछते हैं कि भगवान् के सेवक कभी आसुरी शरीरों में कैसे गिर सकते हैं, और नारद से वह कथा सुनाने का अनुरोध करते हैं। नारद बताते हैं कि शिशुपाल तथा दन्तवक्र वस्तुतः जय और विजय ही थे — भगवान् विष्णु के शाश्वत धाम वैकुण्ठ के दो द्वारपाल।

युधिष्ठिर का विस्मय केवल जिज्ञासा से कहीं अधिक गहरा था। वे तर्क करते हैं कि वैकुण्ठ के निवासियों के शरीर पूर्णतः आध्यात्मिक हैं, प्रकृति से अछूते — और जो एक बार उस शाश्वत धाम को प्राप्त कर लेता है, वह कभी जन्म-मृत्यु में नहीं लौटता। फिर भगवान् के अपने ही मुक्त पार्षद उन्हीं से घृणा करने के लिए नीचे कैसे गिराए जा सकते हैं? (SB 7.1.34-35) नारद का उत्तर इस अध्याय के सबसे गुप्त रहस्य को

उद्धाटित करता है: ऐसा अवतरण वस्तुतः कभी पतन नहीं होता। जब भगवान् का कोई घनिष्ठ पार्षद वैकुण्ठ को छोड़ता प्रतीत होता है, तब यह स्वयं भगवान् की अचिन्त्य व्यवस्था से होता है, ताकि वे एक योग्य प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध की लीला का आनन्द ले सकें; यह निर्वासन उनकी प्रसन्नता के लिए की गई सेवा है, कृपा से पतन नहीं, तथा उसके पश्चात् आने वाले तीन आसुरी जन्म केवल उस सेवा का मूल्य तथा उसकी समय-सारणी हैं (SB 7.1.35-46)।

बहुत पहले, चार बाल-ऋषि — सनन्दन तथा उनके भाई, ब्रह्मा के मानस-पुत्र — तीनों लोकों में विचरते हुए अन्त में वैकुण्ठ के द्वार पर आए। यद्यपि ये ऋषि सृष्टि के प्रथम प्रजापतियों से भी वयोवृद्ध थे, वे पाँच-छह वर्ष के नग्न बालकों के समान प्रतीत होते थे, और दोनों द्वारपालों ने उन्हें केवल शिशु समझकर उनका मार्ग रोक दिया।

पञ्चषड्हायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।

दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाःस्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥ ३७ ॥

pañca-ṣaḍdhāyanārbhābhāḥ pūrveṣām api pūrvajāḥ dig-vāsasaḥ śīsūn matvā dvāḥ-sthau tān pratyāsedhatām

अर्थ: यद्यपि वे सबसे प्राचीन जीवों से भी पूर्व उत्पन्न थे, वे चार ऋषि पाँच-छह वर्ष के बालकों जैसे दिखते थे और केवल दिशाओं को ही वस्त्र-रूप में धारण किए थे; उन्हें केवल शिशु समझकर दोनों द्वारपालों ने द्वार पर उन्हें रोक दिया। (SB 7.1.37)



चार बाल-ऋषि सनन्दन तथा उनके भाई — बालक रूप में दीप्तिमान वयोवृद्ध आत्माएँ — वैकुण्ठ के देदीप्यमान द्वार पर द्वारपाल जय और विजय द्वारा रोक लिए जाते हैं (SB 7.1.35-37)।

शाप और तीन जन्मों का पुनरागमन

अपमान से क्रुद्ध होकर ऋषियों ने दोनों द्वारपालों को वैकुण्ठ से गिरकर आसुरी योनियों में जन्म लेने का शाप दे दिया। ज्यों ही जय और विजय गिरने लगे, दयालु ऋषियों ने शाप को कोमल किया: भगवान् के शत्रु के रूप में तीन जन्मों के पश्चात् दोनों अपनी शाश्वत सेवा में लौट आएँगे।



अपमानित बाल-ऋषियों के शाप से द्वारपाल जय और विजय वैकुण्ठ से गिरने लगते हैं, जबकि करुणामय ऋषि शाप को तीन जन्मों तक सीमित कर देते हैं (SB 7.1.37-38)।

और इस प्रकार, नारद युधिष्ठिर को बताते हैं, वे दोनों पहले दिति के पराक्रमी पुत्र हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष के रूप में जन्मे — बड़ा भाई भगवान् के नरसिंह रूप द्वारा तथा छोटा भगवान् के वराह रूप द्वारा मारा गया। अगले जन्म में वे ऋषि विश्रवा के पुत्र, राक्षस-भ्राता रावण तथा कुम्भकर्ण बने, जिन्हें भगवान् ने श्रीराम के रूप में मारा। और अब, अपने तीसरे तथा अन्तिम आसुरी जन्म में, वे शिशुपाल तथा दन्तवक्र बने थे।

तावत्र क्षत्रियौ जातौ मातृष्वसात्मजौ तव ।
अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥ ४६ ॥

tāv atra kṣatriyau jātau mātṛ-ṣvasrātmajau tava adhunā śāpa-nirmuktau kṛṣṇa-cakra-hatāmhasau

अर्थ: वे दोनों यहाँ क्षत्रिय-कुल में शिशुपाल तथा दन्तवक्र के रूप में, आपकी मौसियों के पुत्र होकर जन्मे; और अब, श्रीकृष्ण के चक्र से उनके पाप नष्ट हो जाने पर, वे शाप से मुक्त हो गए हैं। (SB 7.1.46)

तीन जन्मों के निरन्तर, प्रज्वलित वैर के द्वारा उनका मन एक क्षण के लिए भी कृष्ण से नहीं हटा — और इसलिए, नियत समय पर, वे पुनः उनके सेवकों के रूप में उनकी उपस्थिति में लौट आए।



जय और विजय के तीन आसुरी जन्म — हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष के रूप में, रावण तथा कुम्भकर्ण के रूप में, और शिशुपाल तथा दन्तवक्र के रूप में — प्रत्येक जोड़ी भगवान् के अपने अवतारों द्वारा मारी गई और इस प्रकार मुक्त हुई (SB 7.1.44-46)।

कथा कह दिए जाने पर युधिष्ठिर की — और परीक्षित की — शंका का समाधान हो जाता है: भगवान् कभी पक्षपात से कार्य नहीं करते, क्योंकि जिन्हें वे मारते प्रतीत होते हैं, वे भी घर की ओर ले जाए जा रहे होते हैं। और हिरण्यकशिपु का उल्लेख युधिष्ठिर को वही प्रश्न पूछने को प्रेरित करता है जो इस स्कन्ध की शेष कथा का द्वार खोलेगा: वह असुर-राज अपने ही कोमल, भगवद्भक्त पुत्र प्रह्लाद से घृणा क्यों करने लगा?

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् वास्तव में सबके प्रति समान हैं। उनका कोई भौतिक शरीर, कोई स्वार्थ, तथा कोई वास्तविक शत्रु नहीं है; जो पक्षपात-सा दिखता है, वह काल तथा प्रकृति के गुणों का निष्पक्ष व्यापार है (SB 7.1.6-12)।
2. दिव्य दण्ड एक गुप्त कृपा है। जब भगवान् किसी शत्रु का वध करते भी प्रतीत होते हैं, तब भी वे उस आत्मा के परम कल्याण के लिए ऐसा करते हैं, कभी द्वेष से नहीं (SB 7.1.23-25)।
3. जो उद्धार करता है वह भगवान् में पूर्णतया स्थिर मन है। भगवान् में लीनता — चाहे वह प्रेम, भय, काम अथवा द्वेष से रँगी हो — शुद्ध करती और मुक्त करती है; जो वास्तव में उनमें मन स्थिर करता है, वह कभी अन्ततः नष्ट नहीं होता (SB 7.1.25-31)।
4. भक्ति ही सुरक्षित तथा मधुर मार्ग है। नारद वैर का उल्लेख केवल भगवान् की असीम कृपा दिखाने के लिए करते हैं, उसकी अनुशंसा के लिए नहीं; वैर मार्ग में आत्मा का विनाश करता है, जबकि भक्ति उसे शान्ति से घर ले जाती है (SB 7.1.28-31)।
5. कोई भी सच्चा भक्त वास्तव में कभी नहीं गिरता। जय और विजय का जो पतन तथा तीन जन्मों का पुनर्जन्म दिखता है, वह वस्तुतः स्वयं भगवान् की इच्छा की व्यवस्था थी, ताकि वे शत्रु के रूप में उनकी सेवा का आनन्द ले सकें — यह उनकी कृपा से पतन कभी नहीं था (SB 7.1.34-46)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक विचित्र सान्त्वना छिपी है। हम प्रायः यह कल्पना करते हैं कि केवल शुद्ध तथा प्रेमी ही भगवान् के निकट हैं, और द्वेषी तथा पतित किसी प्रकार उनकी पहुँच से परे हैं। नारद कोमलता से इसे उलट देते हैं। मापदण्ड, वे कहते हैं, हमारी भावना की मधुरता नहीं, अपितु हमारे ध्यान की पूर्णता है। शिशुपाल कृष्ण से घृणा करता था — किन्तु वह उनका चिन्तन करना नहीं छोड़ सका। उसका सारा जीवन उसी एक नाम में समा गया जिससे वह घृणा करता था, और अन्त में वही अखण्ड स्मरण, भगवान् की कृपा से प्रज्वलित होकर, उस सबको भस्म कर गया जो उन्हें पृथक् करता था। निःसन्देह हमसे उसके द्वेष का अनुकरण नहीं कहा जाता; गोपियों की लालसा तथा ऋषियों की भक्ति ही चलने योग्य मार्ग हैं। किन्तु हम कथा के भीतर छिपे गहन सत्य से धैर्य ले सकते हैं: कि भगवान् उस किसी को भी नहीं खोते जो उन्हें मन में रखता है, और हमारा प्रतिरोध, हमारा भय, हमारा उलझा तथा अपूर्ण ध्यान भी, जब उनकी ओर मुड़ता है, वही सूत्र बन जाता है जिससे वे चुपचाप हमें घर खींच लाते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, यह ध्यान दें कि आपका मन स्वयं ही बार-बार कहाँ लौटता है — शायद किसी चिन्ता, किसी विद्वेष, अथवा किसी भय की ओर जो आपका पीछा नहीं छोड़ता। केवल एक बार, उसी बेचैन तीव्रता को कोमलता से भगवान् की ओर मोड़ दें। शान्त बैठें, श्वास लें, और पूर्ण ध्यान से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” जो ऊर्जा आप चिन्ता पर व्यय करते, उसे एक क्षण के लिए उनके स्मरण में लगने दें। यही नारद की शिक्षा का व्यावहारिक रूप है: जो मन रुक नहीं सकता, उसे कम-से-कम उस एक की ओर मोड़ा जा सकता है जो उद्धार करता है।

उपसंहार

यह अध्याय अन्ततः यही सिखाता है कि भगवान् कभी पक्षपाती नहीं होते — कृपा अथवा दण्ड जैसा जो कुछ दिखता है, वह केवल काल तथा प्रकृति का कार्य है, उस भगवान् के इर्द-गिर्द जिसका न कोई शत्रु है, न मित्र। और वचन इससे भी मधुर है: जो मन एक बार उनमें स्थिर हो जाए, चाहे किसी भी भाव से, वह कभी खोया नहीं जाता। शिशुपाल का द्वेष कृष्ण की कृपा से आगे नहीं टिका, और जय-विजय के तीन आसुरी जन्म भी उन्हें वैकुण्ठ से सदा के लिए पृथक् न कर सके, क्योंकि उनका निर्वासन भी भगवान् की ही इच्छा थी। शेष स्कन्ध — प्रह्लाद तथा उनके अत्याचारी पिता की कथा — दिखाएगा कि वह कृपा कहाँ तक पहुँचती है।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, अध्याय 1, पृष्ठ 646–650।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-1-supreme-lord-equal-to-all-jaya-vijaya-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

